गुवाहाटी उच्च न्यायालय एवं अन्य

बनाम

कुलधर फूकन एवं अन्य

22 मार्च 2002

[आर.सी. लाहोटी और के.जी. बालाकृष्णन, जे.जे.]

भारत का संविधान, 1950, अनुच्छेद 235:

अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण-उच्च न्यायालय का नियंत्रण और उच्च न्यायालय के साथ परामर्श-क्षेत्र और सीमा-'नियंत्रण' शब्द व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता है और 'परामर्श' का अर्थ है सार्थक, प्रभावी और सचेत परामर्श-ऐसा नियंत्रण और परामर्श मात्र औपचारिकता नहीं है।

'उच्च न्यायालय के साथ 'परामर्श' - नियुक्ति के बाद राज्य सरकार द्वारा अधिसूचना की प्रति उच्च न्यायालय को भेजने की आवश्यकता - क्या 'परामर्श' की आवश्यकता को पूरा करता है, नहीं - अनिवार्य संवैधानिक आवश्यकता के अनुपालन न करने के कारण होने वाली अमान्यता को एक या दोनों पदाधिकारियों की ओर से निष्क्रियता मात्र के द्वारा ठीक नहीं किया जा सकता है।

सेवा में ग्रहणाधिकार - न्यायिक अधिकारी को राज्य ई सरकार में अस्थायी रूप से नियुक्त किया गया - बाद में नियमित किया गया उच्च न्यायालय से कोई परामर्श नहीं - क्या न्यायिक सेवाओं में न्यायिक अधिकारी का ग्रहणाधिकार कानूनी सेवाओं में उनकी नियुक्ति पर स्वचालित रूप से समाप्त हो जाता है - ऐसे मामले में न्यायिक सेवा में ग्रहणाधिकार समाप्त नहीं होता।

असम लोक सेवा (तदर्थ) नियुक्ति नियम, 1986/असम कानूनी सेवा नियम, 1962-नियम 3(1)/नियम 7-तदर्थ नियुक्ति-राज्य सेवा में न्यायिक अधिकारी -उच्च न्यायालय से पूर्व परामर्श क्या आदेशात्मक है - अभिनिर्धारित - हां

प्रतिवादी नंबर 1 को असम न्यायिक सेवा ग्रेड-III में न्यायिक अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया था। कुछ वर्षों के बाद असम कानूनी सेवा के ग्रेड III में उप सचिव के पद पर नियुक्ति के लिए आवेदन आमंत्रित करने के लिए एक विज्ञापन जारी किया गया। नियमित भर्ती के माध्यम से असम लोक सेवा आयोग (एपीएससी) के माध्यम से भरे जाने वाले पद पर नियुक्ति बिना किसी सूचना के अस्थायी और समाप्त करने योग्य थी। प्रतिवादी नंबर 1 ने आवेदन दायर किया जिसे असम उच्च न्यायालय द्वारा अग्रेषित किया गया और अस्थायी रूप से नियुक्त किया

गया। उच्च न्यायालय ने नई नियुक्ति के स्थान पर उनकी सेवा माफ की। फिर नियुक्ति की अधिसूचना जारी की गयी।

बाद में प्रतिवादी नंबर 1 को स्थाई किया गया। इसके बाद उप सचिव पद पर नियमित नियुक्ति के लिए आवेदन आमंत्रित किये गये. प्रतिवादी नंबर । ने भी आवेदन दायर किया लेकिन उच्च न्यायालय के माध्यम से नहीं। फिर उनका चयन किया गया और उन्हें असम विधायी विभाग के उप सचिव के रूप चुना गया एवं "नियमित" किया गया। इस आशय की अधिसूचना जारी कर दी गयी. प्रतिवादी संख्या 1 की नियुक्ति को नियमित करने से पहले या बाद में सरकार द्वारा उच्च न्यायालय से कोई परामर्श नहीं किया गया।

प्रतिवादी नंबर 1 को उच्च न्यायालय द्वारा असम न्यायिक सेवा के ग्रेड III से ग्रेड II में पदोन्नत किया गया था, हालांकि उसे अगले आदेश तक "वर्तमान पद" पर बने रहने की अनुमति दी गई थी। इसके बाद प्रतिवादी नंबर 1 को सूचित किया गया कि वह या तो असम कानूनी सेवा में बने रहने या असम न्यायिक सेवा में वापस जाने के अपने विकल्प का उपयोग कर सकता है। प्रतिवादी क्रमांक 1 ने न तो अपना विकल्प व्यक्त किया और न ही कोई प्रतिक्रिया दी।

असम सरकार ने तब प्रतिवादी नंबर 1 को "अस्थायी रूप से और अगले आदेश तक" असम कानूनी सेवा के उप सचिव के पद से ग्रेड II तक

पदोन्नत किया और अधिसूचना जारी की गई। फिर इस तरह की पदोन्नति का निर्देश देने से पहले या बाद में भी सरकार द्वारा उच्च न्यायालय के साथ कोई परामर्श नहीं किया गया।

उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी नंबर 1 को उसके मूल विभाग में वापस बुलाने और उसे सहायक जिला और सत्र न्यायाधीश के रूप में तैनात करने का निर्णय लिया। हालाँकि, प्रतिवादी नंबर 1 ने असम कानूनी सेवा में स्थायी अवशोषण की इच्छा जताई। इसके बाद उन्होंने रिट याचिका दायर की। उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि प्रतिवादी नंबर 1 असम न्यायिक सेवा का सदस्य था और उच्च न्यायालय से परामर्श के बिना उसे असम कानूनी सेवा में नियमित या समाहित नहीं किया जा सकता था। प्रतिवादी नंबर 1 ने फिर एक रिट अपील दायर की। डिवीजन बेंच ने इसे यह कहते हुए स्वीकार कर लिया कि असम कानूनी सेवा में प्रतिवादी नंबर 1 की नियुक्ति मूल पद पर थी और वह दो मूल पदों के विरुद्ध ग्रहणाधिकार नहीं रख सकता था। इसलिए वर्तमान अपील।

न्यायालय ने अपील का निपटारा करते हुए अभिनिर्धारित किया-

1. संविधान का अनुच्छेद 235 जिला अदालतों और उसके अधीनस्थ अदालतों पर नियंत्रण उच्च न्यायालय में निहित करता है। अधीनस्थ न्यायपालिका में पदस्थ पदाधिकारियों की पोस्टिंग और पदोन्नति सहित

उनके सेवा करियर से संबंधित सभी मामले उच्च न्यायालय के नियंत्रण के अधीन हैं। एक बार जब कोई व्यक्ति न्यायिक सेवा में प्रवेश कर लेता है, तो वह वहां से उच्च न्यायालय की अनुमति के बिना हट नहीं सकता।

संविधान के अनुच्छेद 235 में उल्लिखित 'नियंत्रण' शब्द का उपयोग व्यापक अर्थ में किया गया है और इसमें न्यायिक और प्रशासनिक दोनों पक्षों पर अधीनस्थ न्यायालयों और उन्हें संचालित करने वाले व्यक्तियों पर उच्च न्यायालय का नियंत्रण और अधीक्षण शामिल है। ऐसे मामले में भी जिसमें राज्यपाल निर्णय ले सकते हैं, उच्च न्यायालय के परामर्श के बिना निर्णय नहीं लिया जा सकता। परामर्श अनिवार्य है और उच्च न्यायालय की राय राज्य सरकार पर बाध्यकारी है; अन्यथा नियंत्रण, जैसा कि अनुच्छेद 235 में अपेक्षित है, अस्वीकृत कर दिया जाएगा। ऐसा नियंत्रण और परामर्श मात्र औपचारिकता का विषय नहीं है; वे उच्च न्यायालय की संवैधानिक शक्ति और विशेषाधिकार हैं, साथ ही उसका दायित्व भी हैं, और जब उच्च न्यायालय को कार्य करना चाहिए तो कार्य करने में विफल रहने की सरासर निष्क्रियता से उन्हें कमजोर नहीं किया जा सकता है। राज्यपाल अधीनस्थ न्यायपालिका से संबंधित किसी भी मामले में कार्रवाई करने के लिए आगे नहीं बढ़ सकते हैं और परामर्श की प्रक्रिया को केवल इसलिए नजरअंदाज नहीं कर सकते हैं क्योंकि उच्च न्यायालय को 'सूचित' होने के बावजूद कार्रवाई या प्रतिक्रिया नहीं दी गई। यहां परामर्श का तात्पर्य सार्थक, प्रभावी एवं सचेत परामर्श से है। [818-बी-ई]

तेज पाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य। और अन्य, [1986] 3 एससीसी 604, पर भरोसा किया गया।

उड़ीसा राज्य बनाम सुधांशु शेखर मिश्रा और अन्य, [1968] 2 एससीआर 154; बिहार राज्य और अन्य. वी. बाल मुकुंद शाह और अन्य, [2000] 4 एससीसी 640; मदन मोहन चौधरी बनाम बिहार राज्य और अन्य, [1999] 3 एससीसी 396; आंध्र प्रदेश के मुख्य न्यायाधीश ई और अन्य। आदि. वि. एल.वी.ए. दीक्षितुलु और अन्य, आदि, [1979] 2 एससीसी 34 और पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य। वी. नृपेंद्र नाथ बागची, [1966] 1 एससीआर 771, संदर्भित।

2.1. जनहित में 'तत्काल' की जाने वाली तदर्थ नियुक्ति को लोक सेवा आयोग के संदर्भ में छोड़ कर किया जा सकता है। हालाँकि, यदि पहले से ही न्यायिक सेवा में मौजूद किसी उम्मीदवार को नियुक्त किया जाना है, तो जाहिर तौर पर उसकी सेवाओं को उच्च न्यायालय द्वारा समाप्त करना होगा, ऐसा न करने पर उसे तदर्थ भी नियुक्त नहीं किया जा सकता है। कोई पद जिसके लिए स्वीकृत किया गया है, या जिसके चार महीने से अधिक समय तक चलने की संभावना है, उसे लोक सेवा आयोग के परामर्श से नियमित आधार पर नियुक्ति करके भरा जाना चाहिए। यदि ऐसी नियुक्ति के लिए चुना गया व्यक्ति न्यायिक अधिकारी है, तो उसे उच्च न्यायालय के परामर्श के बिना नियुक्त नहीं किया जा सकता है, ऐसा परामर्श नियम 7 के

तहत अनिवार्य है। नियम में परामर्श का प्रावधान इसे संविधान के अनुरूप लाता है। [821-बी-डी]

2.2. राज्य सरकार की तत्काल आवश्यकता की संतुष्टि के लिए प्रतिवादी नंबर 1 को असम में उप सचिव के रूप में कानूनी सेवा ग्रेड-III में अस्थायी एवं तदर्थ नियुक्त किया गया था।

राज्य सरकार को तत्काल आवश्यकता है.उस उद्देश्य के लिए प्रतिवादी नंबर 1 के आवेदन को उच्च न्यायालय द्वारा अग्रेषित किया गया था और उसकी सेवाओं को भी नया कार्यभार संभालने से मुक्त कर दिया गया था। हालाँकि, उप सचिव के रूप में नियमित आधार पर नियुक्ति की मांग करते समय, प्रतिवादी नंबर 1 और राज्य सरकार ने परामर्श की संवैधानिक आवश्यकता को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया। इसी तरह प्रतिवादी नंबर 1 को असम कानूनी सेवा के ग्रेड-III से ग्रेड II में पदोन्नत करते समय और उसे संयुक्त सचिव और कानूनी स्मरणकर्ता के रूप में नियुक्त करते समय, उच्च न्यायालय से परामर्श नहीं किया गया था। केवल इसलिए कि राज्य सरकार ने अपनी अधिसूचनाओं की एक प्रति उच्च न्यायालय को भेज दी, यह नहीं कहा जा सकता कि परामर्श की आवश्यकता पूरी हो गई है। अनिवार्य संवैधानिक आवश्यकता का पालन करने में विफलता के कारण अमान्यता कारित हुई। जैसे कि परामर्श, एक या दोनों पदाधिकारियों की ओर से निष्क्रियता मात्र के द्वारा, जिनके बीच

आवश्यकता को पूरा किया जाना था, या केवल समय की चूक से ठीक नहीं किया जा सकता है। [821-डी, ई, एफ, जी]

2.3. इस दलील में कोई दम नहीं है कि प्रतिवादी नंबर 1 की सेवा असम कानूनी सेवाओं में समाहित हो गई थी और उच्च न्यायालय पहले प्रतिवादी प्रतिनियुक्ति को वापस नहीं बुला सकता था और राज्य न्यायिक सेवाओं में प्रतिवादी नंबर 1 का ग्रहणाधिकार समाप्त हो गया और उसने असम कानूनी सेवा में ग्रहणाधिकार प्राप्त कर लिया था। उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच अनावश्यक रूप से इस तथ्य से प्रभावित थी कि उच्च न्यायालय ने अधिसूचना को वापस लेने के पीछे के कारण को नजरअंदाज करते हुए प्रतिवादी नंबर 1 को न्यायिक अधिकारी के रूप में पोस्ट करने वाली अपनी अधिसूचना को वापस ले लिया था। इस अधिसूचना को वापस लेना पड़ा क्योंकि इसे लागू नहीं किया गया था और इसे वापस लेने की आवश्यकता थी ताकि खाली पड़े न्यायिक कार्यालय को भरने के लिए एक और अधिसूचना जारी की जा सके। इसलिए डिवीजन बेंच ने यह राय बनाते समय संवैधानिक प्रावधान के प्रभाव को भी नजरअंदाज कर दिया कि न्यायिक सेवा में प्रतिवादी नंबर 1 का ग्रहणाधिकार स्वचालित रूप से समाप्त हो गया क्योंकि प्रतिवादी नंबर । की कानूनी सेवा में नियुक्ति हो गई, जबकि वह न्यायिक सेवा का सदस्य था। उच्च न्यायालय के परामर्श के बिना बनाया गया था और इसलिए यह अमान्य था। प्रतिवादी नंबर 1 द्वारा कानूनी सेवा में ग्रहणाधिकार प्राप्त करने और न्यायिक सेवा से

ग्रहणाधिकार समाप्त किए जाने का सवाल ही नहीं उठता। इसलिए, डिवीजन बेंच के फैसले को बरकरार नहीं रखा जा सकता है और इसे रद्द किया जाता है। [822-ई-एच; 823-ए]

2.4. राज्य सरकार इस बारे में निर्णय लेगी कि क्या 'प्रतिवादी नंबर । को सचिव (न्यायिक) और कानूनी अनुस्मारक के अलावा किसी अन्य अधिकारी में तैनात किया जा सकता है, जिस स्थिति में वह असम कानूनी सेवा में जारी रह सकता है और उसे वापस भेजने की आवश्यकता नहीं है; यदि ऐसा निर्णय 6 सप्ताह के भीतर नहीं लिया जाता है तो प्रतिवादी नंबर 1 को उच्च न्यायालय में न्यायिक सेवा के सदस्य के रूप में वापस भेज दिया जाना चाहिए। [824-सी-डी]

सिविल अपीलीय अधिकारिता : सिविल अपील संख्या वर्ष 2002 की 2337

गुवाहाटी उच्च न्यायालय द्वारा 1996 के डब्ल्यूए नंबर 177 में पारित निर्णय और आदेश मे दिनांक 2.6.2000 से

विजय हंसारिया, सुनील कुमार जैन एम/एस जैन हंसारिया की और से एवं अपीलकर्ता की और से।

पी.के. गोस्वामी, आर. रहीम और राजीव मेहता प्रतिवादी संख्या 2 की और से।

सुश्री आशा जी. नायर, वी.के. सिदाथरन और सुश्री कृष्णा सरमा असम राज्य के मैसर्स कॉर्पोरेट लॉ ग्रुप की आेर से।

न्यायालय का निर्णय आर.सी. लाहोटी, जे के द्वारा सुनाया गया तथा अनुमति दी गई

2.7.1977 को, प्रतिवादी नंबर 1, कुलधर फुकन को असम न्यायिक सेवा ग्रेड-III में न्यायिक अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया था और 5.7.1977 को, उन्हें तिनसुकिया में न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वितीय श्रेणी के रूप में तैनात किया गया था। 27.2.1986 को, असम सरकार, न्यायिक विभाग: न्यायिक शाखा ने असम कानूनी सेवा के ग्रेड III में उप सचिव के पद पर नियुक्ति के लिए आवेदन आमंत्रित करते हुए एक विज्ञापन निकाला। ऐसी नियुक्ति तत्काल आवश्यकता को पूरा करने के लिए एपीएससी (कार्य की सीमा) विनियम, 1951 के विनियम 3 (ई) के तहत की जानी थी। नियमित भर्ती के माध्यम से असम लोक सेवा आयोग (एपीएससी) द्वारा भरे जा रहे पद पर नियुक्ति अस्थायी और बिना किसी सूचना के समाप्त करने योग्य थी। भर्ती का क्षेत्र पांच साल के अभ्यास वाले वकील या अधिवक्तागण या पांच साल तक कार्यरत न्यायिक अधिकारीगण थे। प्रतिवादी नंबर । ने एक आवेदन किया जिसे असम उच्च न्यायालय द्वारा अग्रेषित किया गया था। उन्हें असम कानूनी सेवा के ग्रेड III में "अस्थायी रूप से और अगले आदेश तक" नियुक्त किया गया था। नियुक्ति की अधिसूचना दिनांक 18.7.1986 की प्रतियां रजिस्ट्रार, गुवाहाटी उच्च न्यायालय, गुवाहाटी को इस अनुरोध के साथ भेजी गईं कि अधिकारी को तुरंत कार्यमुक्त किया जाए ताकि वह नए कार्यभार में शामिल हो सकें;

प्रतिवादी नंबर 1 को सूचित करते हुए कि जैसे ही पद एपीएससी द्वारा विज्ञापित किया गया था, उसे अपनी तदर्थ नियुक्ति के नियमितीकरण के लिए एपीएससी को आवेदन करना चाहिए; और सचिव, एपीएससी को यह कहते हुए कि नियुक्ति सार्वजनिक सेवा के हित में आवश्यक हो गई है और आयोग से अनुरोध किया गया था कि वह पद को तुरंत विज्ञापित करे और अपनी सिफारिशजितनी जल्दी हो सके सरकार को भेजे।

29.7.1986 को, उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी नंबर 1 को अपने कार्यालय का प्रभार किसी अन्य न्यायिक अधिकारी को सौंपने और तुरंत अपने नए कार्यभार में शामिल होने के लिए आगे बढ़ने का निर्देश दिया। सरकार को सूचित किया गया कि प्रतिवादी नंबर । की सेवाएं नियुक्ति के साथ ही असम सरकार के निपटान में रखी जा रही थी। 11.9.1986 को, प्रतिवादी नंबर 1 को असम न्यायिक सेवा ग्रेड ।।। में पुष्टि की गई थी। उनकी सापेक्ष वरिष्ठता असम न्यायिक सेवा के ग्रेड ।। में निर्धारित की गई थी और उन्हें ग्रेड ।। में परिवीक्षा पर रखा गया था।

इस प्रकार, सब कुछ ठीक हो गया। विवाद के बीज तब बोए गए जब असम सरकार, न्यायिक विभाग: न्यायिक शाखा ने उप सचिव के पद पर नियमित नियुक्ति के लिए आवेदन आमंत्रित किए, जिसके जवाब में प्रतिवादी नंबर 1 ने भी आवेदन किया। उन्हें असम लोक सेवा आयोग द्वारा चुना गया था और आयोग द्वारा की गई सिफारिश के अनुसार, असम

सरकार ने असम सरकार, विधायी विभाग के उप सचिव के रूप में प्रतिवादी नंबर 1 की नियुक्ति को "नियमित" कर दिया। इस आशय की एक अधिसूचना 10.9.1987 को जारी की गई थी जिसकी प्रति रजिस्ट्रार (न्यायिक), गुवाहाटी उच्च न्यायालय, गुवाहाटी को भेजी गई थी। हम यहां यह जोड़ने में जल्दबाजी कर सकते हैं कि यह विवादित नहीं है कि नियमित नियुक्ति की मांग के लिए प्रतिवादी नंबर 1 ने अपना आवेदन उच्च न्यायालय द्वारा आयोग या सरकार को अग्रेषित नहीं किया था। प्रतिवादी संख्या 1 की नियुक्ति को नियमित करने से पहले या बाद में सरकार द्वारा उच्च न्यायालय से कोई परामर्श नहीं किया गया। हम थोड़ी देर बाद मामले के इस पहलू के विवरण पर वापस लौटेंगे।

11.9.1986 को उच्च न्यायालय ने असम न्यायिक सेवा ग्रेड III में न्यायिक अधिकारियों की वरिष्ठता सूची अधिसूचित की। प्रतिवादी नंबर 1 को वरिष्ठता सूची में जो स्थान सौंपा गया था, उसके बारे में कुछ शिकायत थी। 24.6.1988 को उन्होंने उच्च न्यायालय में एक अभ्यावेदन दिया जिसमें उन्होंने अन्य बातों के साथ-साथ कहा, "मूल रूप से मैं असम न्यायिक सेवा के ग्रेड III में एक न्यायिक अधिकारी था और अभी भी हूं", "मुझे न्यायिक में नियमित और स्थायी रूप से नियुक्त किया गया था"। "हमारी सेवा की पुष्टि करने और हमारी परस्पर वरिष्ठता तय करने में विफलता" प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों और संविधान के अनुच्छेद 14, 16 और 311 का उल्लंघन है। उन्होंने न्यायिक सेवा में अपनी स्थायीकरण एवं

वरिष्ठता पर पुनर्विचार एवं पुनः निर्धारण की प्रार्थना की। 7.4.1992 को, प्रतिवादी नंबर । उन छह न्यायिक अधिकारियों में से था, जिन्हें उच्च न्यायालय ने असम न्यायिक सेवा के ग्रेड ।।। से ग्रेड ।। में पदोन्नत किया था, हालांकि उन्हें और एक अन्य को आगे तक अपने "वर्तमान पद" पर बने रहने की अनुमति दी गई थी। आदेश. 9.4.1992 को प्रतिवादी क्रमांक 1 को सूचित किया गया कि ऐसी पदोन्नति के मद्देनजर उसे "फिलहाल के लिए अपने वर्तमान कार्यभार" को जारी रखने की अनुमति दी गई है, फिर वह असम कानूनी सेवा में बने रहने या अपनी मूल सेवा, यानी असम न्यायिक सेवा में वापस जाने के लिए अपने विकल्प का उपयोग कर सकता है। प्रतिवादी संख्या 1 ने न तो अपना विकल्प व्यक्त किया और न ही उच्च न्यायालय को कोई प्रतिक्रिया दी।

19.8.1992 को असम सरकार ने प्रतिवादी नंबर 1 को "अस्थायी रूप से और अगले आदेश तक" असम कानूनी सेवा के उप सचिव के पद से ग्रेड ।। तक पदोन्नत किया और उसे संयुक्त कानूनी स्मरणकर्ता, न्यायिक विभाग, असम सरकार, के के रूप में तैनात किया जो कार्यभार ग्रहण करने की तिथि से प्रभावी था। अधिसूचना की प्रति रजिस्ट्रार, गुवाहाटी उच्च न्यायालय को भेजी गई। यहां भी सरकार द्वारा इस तरह की पदोन्नति का निर्देश देने से पहले (या बाद में भी) उच्च न्यायालय के साथ कोई परामर्श नहीं किया गया था।

विवाद तब उत्पन्न हुआ जब 23.2.1995 को उच्च न्यायालय ने असम सरकार और प्रतिवादी संख्या 1 को उसके मूल विभाग में वापस बुलाने के निर्णय की जानकारी दी एवं प्रतिवादी संख्या 1 के स्थान पर एक उपयुक्त विकल्प नियमित क्रम में उपलब्ध कराने का निर्देश दिया। 4.4.1995 को, रजिस्ट्रार (न्यायिक) ने एक बार फिर राज्य सरकार से उच्च न्यायालय के निपटान में प्रतिवादी नंबर 1 की सेवाओं को बदलने के लिए तत्काल कदम उठाने का अनुरोध किया ताकि अधिकारी को वापस लाया जा सके और सहायक जिला के रूप में तैनात किया जा सके। सत्र न्यायाधीश, उत्तरी लखीमपुर 24.4.1995 को या उससे पहले 10.4.1995 को उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी संख्या । की सहायक जिला एवं सत्र न्यायाधीश, लखीमपुर के रूप में नियुक्ति को अधिसूचित किया। 26.4.1995 को प्रतिवादी नंबर 1 ने रजिस्ट्रार (न्यायिक), गुवाहाटी उच्च न्यायालय को एक संचार भेजा, जिसमें उसने पहली बार कहा कि वह असम लोक सेवा आयोग के माध्यम से असम कानूनी सेवा में सीधी भर्ती से चयनित था और वह उन्होंने असम कानूनी सेवा में स्थायी अवशोषण के लिए अपने विकल्प का संकेत देते हुए अपनी इच्छा व्यक्त की थी। आगे कहा गया कि उम्मीद थी कि असम कानूनी सेवा में उनकी सेवा की पुष्टि की जाएगी क्योंकि माननीय मंत्री (कानून आदि) ने ऐसी पुष्टि के आदेश दिए थे। उन्होंने उत्तरी लखीमपुर में न्यायिक अधिकारी के रूप में अपनी तैनाती रद्द करने का अनुरोध किया। 20.3.1996 को असम सरकार ने प्रतिवादी नंबर

1 की सेवाओं को गुवाहाटी उच्च न्यायालय के निपटान के लिए अधिसूचित किया। उसी तारीख की एक और अधिसूचना द्वारा असम सरकार ने प्रतिवादी नंबर 1 को संयुक्त कानूनी स्मरणकर्ता और संयुक्त सचिव के पद से मुक्त कर दिया ताकि वह उच्च न्यायालय की अधिसूचना के अनुसार सहायक जिला और सत्र न्यायाधीश, लखीमपुर के रूप में शामिल हो सके।

ऐसा प्रतीत होता है कि दिनांक 20.3.1996 की उपरोक्त दो अधिसूचनाओ की दिनांक से प्रतिवादी अवकाश पर था। 26.3.1996 को प्रतिवादी आरओ.आई ने उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका दायर की जिसमें उच्च न्यायालय द्वारा जारी अधिसूचना दिनांक 10.4.1995 और राज्य सरकार द्वारा जारी दिनांक 20.3.1996 की दो अधिसूचनाओं को चुनौती दी गई। उच्च न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका को सुनवाई के लिए स्वीकार कर लिया और लागू अधिसूचनाओं पर रोक लगा दी। 6.5.1996 को विद्वान एकल न्यायाधीश ने प्रतिवादी संख्या द्वारा दायर रिट याचिका को खारिज कर दिया। मेरा मानना है कि प्रतिवादी नंबर 1 असम न्यायिक सेवा का सदस्य था और उच्च न्यायालय के परामर्श के बिना उसे असम कानूनी सेवा में नियमित या समाहित नहीं किया जा सकता था। 17.5.1996 को प्रतिवादी नंबर 1 ने एक रिट अपील दायर की। उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले पर रोक लगा दी। 17.9.1996 को उच्च न्यायालय ने अपनी अधिसूचना दिनांक 10.4.1995 को वापस ले लिया क्योंकि प्रतिवादी संख्या

1 ने पद का कार्यभार ग्रहण नहीं किया था और वह पद रिक्त पड़ा था। 2.6.1998 को असम सरकार ने भी अपनी 20.3.1996 की दो अधिसूचनाएँ रद्द कर दी। 2.6.2000 को उच्च न्यायालय की खण्ड पीठ ने प्रतिवादी नंबर । की रिट अपील की अनुमति दी और 10.4.1995 और 20.3.1996 की अधिसूचनाओं को रद्द कर दिया, जिससे यह राय बनी कि असम कानूनी सेवाओं में प्रतिवादी नंबर 1 की नियुक्ति एक वास्तविक नियुक्ति थी। वह दो महत्वपूर्ण पदों पर ग्रहणाधिकार नहीं रख सकता था। खण्ड पीठ ने आगे कहा, "इसलिए, हम स्पष्ट रूप से इस विचार पर हैं कि अपीलकर्ता ने 18.7.1986 से असम कानूनी सेवा में एक महत्वपूर्ण पद हासिल कर लिया है और न्यायिक सेवा में उसका ग्रहणाधिकार दिनांक 18.7.1986 के कानून की प्रवर्तनीयता में स्वतः ही समाप्त हो जाता है।

उच्च न्यायालय की खंडपीठ के फैसले से व्यथित गुवाहाटी उच्च न्यायालय और उसके रजिस्ट्रार ने यह अपील विशेष अनुमति से दायर की है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिवादी नंबर 1 न्यायिक सेवा में वापस नहीं आना चाहता है और असम कानूनी सेवा में बने रहना चाहता है। इस न्यायालय के समक्ष सुनवाई के दौरान हमने उच्च न्यायालय के विद्वान वकील से निर्देश देने के लिए कहा था कि यदि उच्च न्यायालय इस मामले को आगे नहीं बढ़ाने और प्रतिवादी नंबर 1 को जहां वह है, उसे छोड़ने के लिए सहमत है। हमें सूचित किया गया था कि उच्च न्यायालय प्रतिवादी नंबर 1 को न्यायिक सेवाओं में उस सही स्थान पर वापस लाने के बारे में

इतना गंभीर नहीं था जहां वह है और होना चाहिए, लेकिन उच्च न्यायालय निश्चित रूप से अपने रुख की पुष्टि के बारे में न्यायपालिका की स्वतंत्रता एवं संविधान के अनुच्छेद 235 की पवित्रता को बनाए रखने हेतु चिंतित था। उच्च न्यायालय के विद्वान वकील द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया कि डिवीजन बेंच का आक्षेपित निर्णय यदि बरकरार रहा तो गंभीर और विसंगतिपूर्ण स्थितियाँ पैदा होंगी।

जहां न्यायिक अधिकारियों को विभिन्न सरकारी विभागों में प्रतिनियुक्ति पर भेजा गया है या जिनकी सेवाओं को सार्वजनिक सुविधा और बेहतर सार्वजनिक प्रशासन के हित में अस्थायी रूप से उधार लिया गया है और उच्च न्यायालय के अलावा अन्य नियोक्ताओं के निपटान में रखा गया है, वे भविष्य में ऐसे अन्य विभागों में समाहित होने का दावा कर सकते हैं। उच्च न्यायालय की सहमति के बिना और उच्च न्यायालय से परामर्श किए बिना स्थानों पर अराजकता की स्थिति पैदा होगी। हम उच्च न्यायालय की चिंता और उसके द्वारा अपनाए गए निष्पक्ष रुख की सराहना करते हैं, और इसलिए, गुण-दोष के आधार पर मामले का निर्णय करने के लिए आगे बढ़ते हैं।

इससे पहले कि हम निर्धारण के लिए मुख्य मुद्दे पर आगे बढ़ें, असम सरकार द्वारा अपनाए गए रुख को रिकॉर्ड में रखना उचित होगा। प्रतिवादी नंबर 1 द्वारा दायर रिट याचिका में, उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी नंबर 1

द्वारा उठाए गए रुख की शुद्धता पर विवाद करते हुए एक जवाबी हलफनामा दायर किया। लेकिन राज्य सरकार ने कोई जवाबी हलफनामा दायर करने का विकल्प नहीं चुना। इसके बजाय लिखित दलीलें दायर की गईं, जिसमें बहुत स्पष्ट और स्पष्ट रूप से राज्य सरकार द्वारा लिया गया रुख यह है कि असम कानूनी सेवाओं में उप सचिव दास के पद पर प्रतिवादी नंबर 1 की नियुक्ति, संयुक्त कानूनी अनुस्मारक और संयुक्त सचिव, न्यायिक के पद पर भी नियुक्ति की गई है। विभाग अस्थायी था और अगले आदेश तक अर्थात पूर्णतः अस्थायी व्यवस्था थी। यह "बिल्कुल झूठ" था कि प्रतिवादी नंबर 1 को असम कानूनी सेवा के नियमित सदस्य के रूप में पुष्टि की गई थी। प्रतिवादी नंबर । के आचरण पर यह आरोप लगाते हुए टिप्पणी की गई कि प्रतिवादी नंबर 1 दोनों दुनियाओं में से सर्वश्रेष्ठ प्राप्त करने का प्रबंधन कर रहा था। उड़ीसा राज्य बनाम सुधांशु शेखर मिश्रा और अन्य.. [1968] 2 एससीआर 154 में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए, राज्य सरकार ने तर्क दिया कि प्रतिवादी नंबर 1 असम न्यायिक सेवा का सदस्य था और उसकी सेवाएं सौंपी गईं कैडर के बाहर 'अस्थायी रूप से और अगले आदेश तक' और इसलिए उच्च न्यायालय के लिए यह खुला था कि वह प्रतिवादी नंबर 1 को वापस बुलाए और उसे जिला न्यायालय के पीठासीन एफ अधिकारी के रूप में तैनात करे। राज्य सरकार ने उच्च न्यायालय के अधिनियम को "अजेय" के रूप में समर्थन दिया क्योंकि प्रतिवादी नंबर 1 का ग्रहणाधिकार उसकी मूल सेवा, अर्थात, असम न्यायिक सेवा में उसके

मूल पद पर "अभी भी जारी है"। तथ्य की दृष्टि से, राज्य सरकार इस बात से सहमत है कि प्रतिवादी नं. 1 ने उच्च न्यायालय की अनुमति से और उसे सूचित करते हुए एपीएससी में आवेदन नहीं किया था।

इस न्यायालय के समक्ष असम राज्य द्वारा उच्च न्यायालय में अपनाए गए रुख को त्यागकर और पूरी तरह से भिन्न रुख अपनाया जाना पूरी तरह से अजीब है। असम राज्य ने अपने जवाबी हलफनामे दिनांक 3.11.2001 में कहा है कि प्रतिवादी नं. 1 में नियमित आधार पर असम कानूनी सेवा में सीधी भर्ती से एवं गुवाहाटी उच्च न्यायालय की अनुमति से नियुक्त था। 28.8.1998 को असम कानूनी सेवा ग्रेड II में उनकी पुष्टि पर, असम न्यायिक सेवा में उनका ग्रहणाधिकार कानून के संचालन द्वारा स्वचालित रूप से समाप्त हो गया। अजीब बात है कि असम सरकार अब इस बात से इनकार कर रही है कि असम कानूनी सेवा में प्रतिवादी नंबर 1 की नियुक्ति के लिए उच्च न्यायालय से परामर्श आवश्यक था। यहां हम यह बता सकते हैं कि सुनवाई के दौरान हमने पक्षों के विद्वान वकील से पूछा था कि क्या उच्च न्यायालय से परामर्श आवश्यक था, और यदि हां, तो परामर्श की आवश्यकता कैसे और किस तरीके से पूरी की गई? दोनों विद्वान वकीलों ने अत्यधिक निष्पक्षता से कहा कि परामर्श की आवश्यकता को समाप्त नहीं किया जा सकता है। हालाँकि, आवश्यकता की संतुष्टि की गई, उत्तरदाताओं नंबर 1 और नंबर 2 के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया, क्योंकि प्रतिवादी नंबर 1 या प्रतिवादी नंबर 2 द्वारा उठाए गए हर कदम को

उच्च न्यायालय के ध्यान में लाया गया था। हालाँकि न्यायालय को असम कानूनी सेवा में रहने के दौरान प्रतिवादी नंबर 1 के सेवा कैरियर में सभी विकासों की जानकारी उच्च न्यायालय को थी और फिर भी उसने असम कानूनी सेवा में प्रतिवादी नंबर 1 की निरंतरता और ग्रेड से पदोन्नत होने पर कभी भी आपत्ति या प्रतिक्रिया नहीं दी। असम कानूनी सेवा में III से ग्रेड II तक जो कुछ भी किया जा रहा था उस पर कभी आपत्ति नहीं की, विरोध तो दूर की बात है। निष्कर्ष यह है कि उच्च न्यायालय ऐसी निरंतरता और पदोन्नति के लिए सहमत था जो परामर्श की आवश्यकता को पूरा करता है। हम इस विवाद की वैधता की जांच थोड़ी देर बाद करेंगे।

संविधान का अनुच्छेद 235 प्रावधानित करता है:

> "235. अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण। जिला न्यायालयों और उनके अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण, जिसमें राज्य की न्यायिक सेवा से संबंधित और जिले के पद से कमतर कोई भी पद धारण करने वाले व्यक्तियों की नियुक्ति, पदोन्नति और अवकाश शामिल है। न्यायाधीश का अधिकार उच्च न्यायालय में निहित होगा, लेकिन इस अनुच्छेद में किसी भी बात को ऐसे किसी भी व्यक्ति से अपील के किसी भी अधिकार को छीनने के रूप में नहीं माना जाएगा जो उसके सेवा की शर्तों को विनियमित करने वाले कानून के

तहत हो सकता है या उच्च न्यायालय को इससे निपटने के लिए अधिकृत किया जा सकता है। उसे ऐसे कानून के तहत निर्धारित उसकी सेवा की शर्तों के अनुसार अन्यथा नहीं।"

शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत और संवैधानिक लोकतंत्र की रक्षा के रूप में एक स्वतंत्र न्यायपालिका की आवश्यकता ने संविधान के संस्थापकों को न्यायपालिका को विशिष्ट स्थान प्रदान करने के लिए प्रेरित किया। अधीनस्थ न्यायालयों से संबंधित संविधान का अध्याय VI अधीनस्थ न्यायपालिका को भी कार्यपालिका और विधायिका के प्रभाव से बचाने के घोषित उद्देश्य को प्राप्त करने का प्रयास करता है। अनुच्छेद 234 के अनुसार

किसी राज्य की न्यायिक सेवाओं में जिला न्यायाधीशों के अलावा अन्य व्यक्तियों की नियुक्तियाँ राज्य के राज्यपाल द्वारा राज्य लोक सेवा आयोग और क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाले उच्च न्यायालय के परामर्श के बाद उनके द्वारा बनाए गए नियमों के अनुसार की जाती हैं। ऐसे राज्य के संबंध में अनुच्छेद 235 उच्च न्यायालय को जिला न्यायालयों और उसके अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण प्रदान करता है। अधीनस्थ न्यायपालिका में पदस्थ पदाधिकारियों की नियुक्ति और पदोन्नति सहित उनके सेवा करियर से संबंधित सभी मामले उच्च न्यायालय के नियंत्रण के अधीन हैं। एक बार जब कोई व्यक्ति न्यायिक सेवा में प्रवेश कर लेता है,

तो वह उच्च न्यायालय की अनुमति के बिना वहां से नहीं जा सकता है। निर्णयों की श्रृंखला द्वारा यह तय किया गया है कि संविधान के अनुच्छेद 235 में संदर्भित 'नियंत्रण' शब्द का उपयोग व्यापक अर्थ में किया गया है और इसमें अधीनस्थ न्यायालयों और उन्हें संचालित करने वाले व्यक्तियों पर उच्च न्यायालय का नियंत्रण और अधीक्षण न्यायिक और प्रशासनिक दोनों पक्षों पर शामिल है। ऐसे मामले में भी जिसमें राज्यपाल निर्णय ले सकते हैं, उच्च न्यायालय के परामर्श के बिना निर्णय नहीं लिया जा सकता। परामर्श अनिवार्य है और उच्च न्यायालय की राय राज्य सरकार पर बाध्यकारी है; अन्यथा नियंत्रण, जैसा कि अनुच्छेद 235 द्वारा सोचा गया है, अस्वीकृत कर दिया जाएगा। ऐसा नियंत्रण और परामर्श मात्र औपचारिकता का विषय नहीं है; वे उच्च न्यायालय की संवैधानिक शक्ति और विशेषाधिकार हैं, साथ ही उसका दायित्व भी हैं, और जब उच्च न्यायालय को कार्य करना चाहिए तो केवल निष्क्रियता या कार्य करने में विफल रहने से इसे कमजोर नहीं किया जा सकता है। राज्यपाल अधीनस्थ न्यायपालिका से संबंधित किसी भी मामले में कार्रवाई करने के लिए आगे नहीं बढ़ सकते हैं और परामर्श की प्रक्रिया को केवल इसलिए नजरअंदाज नहीं कर सकते हैं क्योंकि उच्च न्यायालय को 'सूचित' होने के बावजूद कार्रवाई या प्रतिक्रिया नहीं दी गई। यहां परामर्श का तात्पर्य सार्थक, प्रभावी एवं सचेत परामर्श से है। तेज पाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में और अन्य, [1986] 3 एससीसी 604, यह अभिनिर्धारित किया गया कि किसी

न्यायिक अधिकारी के सेवा करियर को प्रभावित करने वाले मामले में कार्रवाई की पहल आमतौर पर उच्च न्यायालय से होनी चाहिए और अन्यथा उच्च न्यायालय की सिफारिश के अभाव में भी राज्यपाल द्वारा लिया गया कदम अवैध और संवैधानिक वैधता से रहित होगा। ऐसी त्रुटि, यदि की जाती है, लाइलाज होगी और यहां तक कि कार्योत्तर अनुमोदन से भी अमान्यता ठीक नहीं होगी।

उड़ीसा राज्य बनाम सुधांशु शेखर मिश्रा और अन्य, (सुप्रा) मामले में, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि संविधान द्वारा उच्च न्यायालय को न्यायपालिका के नियंत्रण का एकमात्र संरक्षक बनाया गया है। संविधान पीठ के फैसले (पृष्ठ 163-164 पर) से निम्नलिखित अंश को निकालना और पुन: प्रस्तुत करना उपयोगी होगा: -

> "सरकार के लिए किसी भी न्यायिक अधिकारी की सेवा को बख्शते हुए यह उच्च न्यायालय के लिए खुला है कि वह उस अवधि को तय कर सकता है जिसके दौरान वह किसी भी कार्यकारी पद पर रह सकता है। उस अवधि के अंत में, सरकार तब तक उसे अपने मूल विभाग में वापस जाने की अनुमति देने के लिए बाध्य है, जब तक उच्च न्यायालय कुछ और समय के लिए उसकी सेवाओं को समाप्त करने के लिए सहमत नहीं हो जाता, । दूसरे शब्दों में, जिस अवधि

के दौरान एक न्यायिक अधिकारी को कार्यकारी पद पर काम करना चाहिए, उसे उच्च न्यायालय और सरकार के बीच समझौते द्वारा तय किया जाना चाहिए। यदि ऐसा कोई समझौता नहीं है तो सरकार उसे किसी भी समय उसके मूल विभाग में वापस भेजने के लिए स्वतंत्र है। उच्च न्यायालय भी जब भी उचित समझे, उसे वापस बुलाने के लिए समान रूप से खुला है। यदि आपसी समझ हो और एक की कठिनाइयों की दूसरे द्वारा सराहना की जाए, तो सद्भाव होगा। ऐसा कोई कारण नहीं है कि उच्च न्यायालय और सरकार के बीच कोई टकराव हो. बहुत अच्छे कारणों को छोड़कर हमारा मानना है कि उच्च न्यायालय को ऐसे कार्यकारी पदों को भरने के लिए अपने नियंत्रण के तहत किसी भी अधिकारी की सेवाओं को एक सहमत अवधि के लिए छोड़ने के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए, जिसके लिए न्यायिक अधिकारियों की सेवाओं की आवश्यकता हो सकती है। बदले में, सरकार को उच्च न्यायालय की चिंता की सराहना करनी चाहिए कि न्यायिक अधिकारियों को सचिवालय में निहित स्वार्थ हासिल करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। उच्च न्यायालय और सरकार दोनों को इस तथ्य को नहीं भूलना चाहिए कि उन्हें जनता की भलाई के

लिए शक्तियां प्रदान की गई हैं और उन्हें इस तरह से कार्य करना चाहिए जिससे सार्वजनिक हित को आगे बढ़ाया जा सके। यदि वे उस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए कार्य करते हैं जैसा उन्हें करना चाहिए, तो संघर्ष के लिए कोई जगह नहीं है और एक दूसरे पर हावी होने का कोई सवाल ही नहीं उठता है। राज्य के प्रत्येक अंग की अपनी एक विशेष भूमिका होती है। लेकिन हमारा संविधान उन सभी से सेवा की भावना के साथ मिलजुल कर काम करने की अपेक्षा करता है।"

बिहार और अन्य राज्य बनाम बाल मुकुंद साह और अन्य, [2000] 4 एससीसी 640, संविधान पीठ ने फिर से संविधान के संस्थापकों द्वारा सौंपी गई अधीनस्थ न्यायपालिका सेवाओं के लिए पूर्ण और अछूता योजना को सामने लाया है और प्रकाश डाला है, जिसके साथ किसी के भी द्वारा छेड़छाड़ नहीं की जा सकती है। न्यायिक सेवाओं की सेवा संरचना को प्रभावित करने वाले किसी भी नियम को पहले उच्च न्यायालय के परामर्श से बनाया जाना चाहिए अन्यथा इसके परिणामस्वरूप न्यायपालिका की स्वतंत्रता को संरक्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले उच्च न्यायालय की शक्तियां कम हो जाएंगी। यहां तक कि अनुच्छेद 309 परंतुक

के साथ पठित अनुच्छेद 234 के तहत राज्यपाल द्वारा बनाए गए नियमों को भी उच्च न्यायालय के साथ परामर्श की आवश्यकता को पूरा करना होगा जिसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। मदन मोहन चौधरी बनाम बिहार राज्य और अन्य, [1999] 3 एससीसी 396 में, इस न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि तीन शब्द, अर्थात् 'नियुक्ति', 'पदोन्नति' और 'अवकाश का अनुदान' अनुच्छेद 235 में उल्लेखित हैं, केवल उदाहरणात्मक है और यह अधीनस्थ न्यायपालिका के अधिकारियों पर उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग किये जाने वाले नियंत्रण की सीमा को सीमित नहीं करता है। आंध्र प्रदेश के मुख्य न्यायाधीश और अन्य वगैरह बनाम एल.वी.ए. दीक्षितुलु और अन्य। आदि, [1979] 2 एससीसी 34, में संविधान पीठ के अनुसार जिला न्यायालयों और उनके अधीनस्थ न्यायालयों पर उच्च न्यायालय में 'निहित' नियंत्रण के अर्थ को अभिव्यक्त किया और स्पष्ट रूप से कहा कि, दूसरों के बीच, स्थानांतरण और पदोन्नति और पुष्टि न्यायिक सेवा में पद धारण करने वाले व्यक्तियों की ऐसी पदोन्नति, जिला न्यायाधीशों के स्थानांतरण और पूर्व-कैडर पदों पर या प्रशासनिक पदों पर प्रतिनियुक्ति पर तैनात जिला न्यायाधीशों को वापस बुलाना उच्च न्यायालय में निहित है। संविधान पीठ ने पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य में बनाम नृपेंद्र नाथ बागची, [1966] 1 एससीआर 771 और उड़ीसा राज्य बनाम सुधांशु शेखर मिश्रा और अन्य, (सुप्रा) में भी यही विचार रखा।

असम लोक सेवा (तदर्थ) नियुक्ति नियम, 1986 के सी नियम 3(1), और असम कानूनी सेवा नियम, 1962 के नियम 7, जो हमारे लिए प्रासंगिक हैं, निम्नानुसार उद्देश्य प्रदान करते हैं :-

उपरोक्त नियम 3(1) में कहा गया है:

"तदर्थ नियुक्ति- (1) किसी सेवा नियमावली में किसी बात के होते हुए भी, सरकार के अधीन सृजित किसी अस्थायी पद पर सीधी भर्ती द्वारा तदर्थ नियुक्ति की जा सकती है, यदि जनहित में यह आवश्यक हो कि नियुक्ति तत्काल की जाए और आयोग के निदेश में अनुचित विलंब होगा:

बशर्ते कि यदि पद स्वीकृत हो चुका है या चार महीने से अधिक समय तक चलने की संभावना है, तो नियमित आधार पर नियुक्ति करने के लिए आयोग से यथाशीघ्र परामर्श लिया जाएगा, जैसा कि उप-खंड (सी) के उपनियम (2) में दिया गया है। उपरोक्त नियम 7:7. अभ्यर्थियों का चयन -

(1) सेवा में नियुक्ति हेतु व्यक्तियों के सीधे चयन के मामले में, राज्यपाल योग्य कानूनी व्यवसायी या न्यायिक अधिकारियों की कानूनी योग्यता, चातुर्य, सामान्य

बुद्धि, सत्यनिष्ठा और अतीत अनुभव को ध्यान में रखते हुए, चयन करेगा, यदि कोई हो:

बशर्ते कि न्यायिक अधिकारियों में से किसी व्यक्ति की सेवा में नियुक्ति के मामले में, ऐसी कोई नियुक्ति असम उच्च न्यायालय के परामर्श के बिना नहीं की जाएगी।*

(2) राज्यपाल के लिए सेवा के, ग्रेड-1 और ग्रेड-II ए में पदों को भरने के लिए लोक सेवा आयोग से परामर्श करना आवश्यक नहीं होगा लेकिन सेवा के ग्रेड-III और ग्रेड-IV में नियुक्तियाँ हमेशा लोक सेवा आयोग के परामर्श से की जाएंगी।"

*(अब गुवाहाटी उच्च न्यायालय)।

जनहित में 'तत्काल' की जाने वाली तदर्थ नियुक्ति लोक सेवा आयोग के संदर्भ में छूट देकर की जा सकती है। हालाँकि, यदि पहले से ही न्यायिक सेवा में मौजूद किसी उम्मीदवार को नियुक्त किया जाना है, तो जाहिर तौर पर उसकी सेवाओं को उच्च न्यायालय द्वारा समाप्त करना होगा, ऐसा न करने पर उसे तदर्थ भी नियुक्त नहीं किया जा सकता है। कोई पद जिसके लिए स्वीकृत किया गया है या चार महीने से अधिक समय तक रहने की संभावना है, उसे लोक सेवा आयोग के परामर्श से नियमित आधार पर नियुक्ति करके भरा जाना है। यदि ऐसी नियुक्ति के लिए चुना गया

व्यक्ति न्यायिक अधिकारी है, तो उसे उच्च न्यायालय के परामर्श के बिना नियुक्त नहीं किया जा सकता है, ऐसा परामर्श नियम 7 के तहत अनिवार्य रूप से आवश्यक है। नियम में परामर्श का प्रावधान इसे संविधान के अनुरूप लाता है।

असम कानूनी सेवा ग्रेड-III में उप सचिव के रूप में प्रतिवादी नंबर 1 की नियुक्ति शुरू में राज्य सरकार की तत्काल आवश्यकता को पूरा करने के लिए अस्थायी और तदर्थ आधार पर की गई थी। उस उद्देश्य के लिए प्रतिवादी नंबर 1 द्वारा ऐसी नियुक्ति की मांग करने वाले आवेदन को उच्च न्यायालय द्वारा अग्रेषित किया गया था और उसकी सेवाओं को नया कार्यभार संभालने के लिए भी माफ कर दिया गया था। हालाँकि, इसके बाद प्रतिवादी नंबर 1 और राज्य सरकार ने परामर्श की संवैधानिक आवश्यकता को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया। उप सचिव के रूप में नियमित आधार पर नियुक्ति की मांग करते समय, न तो प्रतिवादी नंबर 1 ने अपने आवेदन को उच्च न्यायालय द्वारा अग्रेषित करने की आवश्यकता महसूस की और न ही सरकार ने उच्च न्यायालय से 'परामर्श' की आवश्यकता महसूस की, हालांकि यह संविधान द्वारा अनिवार्य है, जैसा कि ऊपर नियम 7 द्वारा भी उद्धृत किया गया है। इसी प्रकार प्रतिवादी नंबर 1 को असम कानूनी सेवा के ग्रेड- III से ग्रेड- II में पदोन्नत करते समय और उसे संयुक्त सचिव और कानूनी स्मरणकर्ता के रूप में नियुक्त करते समय, उच्च न्यायालय से परामर्श नहीं किया गया था। केवल इसलिए कि राज्य सरकार

ने अपनी अधिसूचनाओं की एक प्रति उच्च न्यायालय को भेज दी, यह नहीं कहा जा सकता कि परामर्श की आवश्यकता पूरी हो गई है। न तो इसे राज्य सरकार द्वारा शुरू किया गया था और न ही उच्च न्यायालय ने परामर्श की अपनी शक्ति, विशेषाधिकार और दायित्व का प्रयोग, लाभ या निर्वहन किया था। परामर्श जैसी अनिवार्य संवैधानिक आवश्यकता का अनुपालन करने में विफलता के कारण होने वाली अमान्यता को उन एक या दोनों पदाधिकारियों की ओर से निष्क्रियता मात्र से ठीक नहीं किया जा सकता है जिनके बीच आवश्यकता को पूरा किया जाना था या केवल समय की चूक से ठीक नहीं किया जा सकता है।

देश के लगभग सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में न्यायिक अधिकारियों की सेवाएं उच्च न्यायालयों द्वारा सरकारों को मुकदमेबाजी, न्यायिक, कानून और विधायी मामलों के विभागों में उपयोग करने के लिए उधार दी जाती हैं, चाहे विभागों को किसी भी नाम से जाना जाता हो। सचिव (कानून) या न्यायिक अधिकारी के रूप में सरकार के अधीन कार्यरत एक कानूनी स्मरणकर्ता, जिनकी सेवाओं को उच्च न्यायालय द्वारा सरकार के निपटान में रखा गया है, की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वह उच्च न्यायालय और सरकार के बीच संचार की एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं और दोनों पक्षों के साथ उनके संबंध रणनीतिक रूप से दोनों के बीच एक स्वस्थ और उचित संबंध बनाए रखने में सक्षम बनाते हैं। जैसा कि इस न्यायालय ने सुधांशु शेखर मिश्रा के मामले (सुप्रा) में कहा था, राज्य सरकार एक सक्षम

न्यायिक अधिकारी की सी सेवाएं उपलब्ध कराने का अनुरोध कर रही है और उच्च न्यायालय द्वारा इस तरह के अनुरोध को स्वीकार करना दोनों की सहमति और इच्छा से है। न तो उच्च न्यायालय को किसी विशेष न्यायिक अधिकारी को बख्शने के लिए मजबूर किया जा सकता है और न ही उच्च न्यायालय किसी विशेष न्यायिक अधिकारी की सेवाओं को सरकार पर थोप सकता है। बातचीत से आम सहमति बनाई जा सकती है। हालाँकि, यदि एक सक्षम न्यायिक अधिकारी की सेवाएँ, जो अन्यथा उच्च न्यायालय के लिए उपयोगी होतीं, उच्च न्यायालय की सहमति के बिना राज्य सरकार द्वारा स्थायी रूप से विनियोजित की जाती हैं, तो यह संवैधानिक प्रावधान का उल्लंघनकारी होने के अलावा व्यवस्था और स्वस्थ अभ्यास विनाशकारी होगा।

इसलिए, हमारी स्पष्ट राय है कि इस दलील में कोई दम नहीं है कि प्रतिवादी नंबर 1 की सेवा असम कानूनी सेवाओं में समाहित हो गई थी और उच्च न्यायालय प्रतिवादी नंबर । की प्रतिनियुक्ति को वापस नहीं ले सकता था। यह दलील भी उतनी ही निराधार है कि राज्य न्यायिक सेवाओं में प्रतिवादी नंबर 1 का ग्रहणाधिकार समाप्त हो गया है और उसने असम कानूनी सेवा में ग्रहणाधिकार हासिल कर लिया है। उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच अनावश्यक रूप से इस तथ्य से प्रभावित थी कि उच्च न्यायालय ने अधिसूचना वापस लेने के पीछे के कारण को नजरअंदाज करते हुए 17.9.1996 को अपनी अधिसूचना दिनांक 10.4.1995 को वापस

ले ली थी। प्रतिवादी नंबर । को न्यायिक अधिकारी के रूप में पोस्ट करने वाली अधिसूचना को वापस लेना पड़ा क्योंकि इसे पूरा नहीं किया गया था और इसे वापस लेने की आवश्यकता थी ताकि खाली पड़े न्यायिक कार्यालय को भरने के लिए एक और अधिसूचना जारी की जा सके। इसलिए डिवीजन बेंच ने यह राय बनाते समय संवैधानिक प्रावधान के प्रभाव को नजरअंदाज कर दिया कि न्यायिक सेवा में प्रतिवादी नंबर 1 का ग्रहणाधिकार स्वचालित रूप से समाप्त हो जाता है क्योंकि प्रतिवादी नंबर 1 की कानूनी सेवा में नियुक्ति हो जाती है, जबकि वह न्यायिक सेवा का सदस्य था। उच्च न्यायालय के परामर्श के बिना बनाया गया था और इसलिए यह अमान्य था। प्रतिवादी नंबर 1 द्वारा कानूनी सेवा में ग्रहणाधिकार प्राप्त करने और न्यायिक एच सेवा में ग्रहणाधिकार समाप्त होने का सवाल ही नहीं उठता। उच्च न्यायालय के खण्ड पीठ का फैसला कायम नहीं रखा जा सकता और इसे रद्द किये जाने योग्य है।

संवैधानिक और कानूनी स्थिति को शांत कर दिया गया है, जो सवाल अभी भी तय किया जाना बाकी है वह यह है कि इस मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में किस तरह से राहत दी जानी चाहिए। जैसा कि इस फैसले में पहले उल्लेख किया गया है, अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील ने सुनवाई के दौरान यह स्पष्ट कर दिया कि गौहाटी उच्च

न्यायालय ने एक वादी के रूप में इस न्यायालय से संपर्क नहीं किया है और उच्च न्यायालय को प्रतिवादी नंबर 1 को न्यायिक सेवाओं के दायरे में वापस लाने में इतनी भी दिलचस्पी नहीं थी क्योंकि इसका उद्देश्य न्यायिक सेवाओं के सदस्यों के संबंध में कानून और सेवा न्यायशास्त्र की सही स्थिति की पुष्टि करना था। ऐसा किया गया है। प्रतिवादी नंबर 1 के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि 1986 से, यानी इस समय तक 16 साल से थोड़ी कम अवधि के लिए, वह राज्य की कानूनी सेवा में तैनात रहे हैं और अब वह अपने सेवा करियर के अंत के करीब हैं, यह देखते हुए कि उनकी सेवानिवृत्ति में कुछ ही वर्ष शेष रह गए हैं। प्रतिवादी नंबर 1 के विद्वान वकील द्वारा अंत में यह प्रस्तुत किया गया कि प्रतिवादी नंबर । ने गुवाहाटी उच्च न्यायालय द्वारा दायर विशेष अनुमति द्वारा इस अपील में अपनी प्रतियोगिता भी छोड़ दी होती, लेकिन इस तथ्य के लिए कि उसका बेटा दुर्भाग्य से ठीक नहीं है और गंभीर न्यूरोलॉजिकल समस्या से पीड़ित हैं, गुहावाटी के एक विशेषज्ञ न्यूरोलॉजिस्ट, जो गुवाहाटी मेडिकल कॉलेज में न्यूरोलॉजी विभाग के प्रोफेसर और प्रमुख हैं, के विशेषज्ञ मार्गदर्शन और देखरेख में उपचार ले रहे हैं। उनके बेटे के स्वास्थ्य को गंभीर खतरे के अलावा गुवाहाटी से कहीं और स्थानांतरित करना मुश्किल होगा। अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील ने निर्देशों के तहत एक बयान दिया कि प्रतिवादी नंबर 1 को न्यायिक सेवा में वापस लाए जाने की स्थिति में उच्च न्यायालय प्रतिवादी नंबर 1 की समस्या पर सहानुभूतिपूर्ण और मानवीय

दृष्टिकोण अपनाएगा और वह होगा कि उन्हें एक ऐसे स्टेशन पर तैनात किया गया है जहां से: वह बिना किसी असुविधा के अपने बेटे का न्यूरोलॉजिकल उपचार जारी रख सकता है। यह भी प्रस्तुत किया गया कि उच्च न्यायालय को प्रतिवादी नंबर 1 के विधिक सेवा में बने रहने और यहां तक कि उसमें समाहित माने जाने पर कोई गंभीर आपत्ति नहीं होगी, लेकिन आरक्षण के अधीन है कि उसे न्यायिक सचिव या कानूनी अनुस्मारक के रूप में तैनात नहीं किया गया था क्योंकि इससे उच्च न्यायालय को कुछ शर्मिंदगी उठानी पड़ सकती है। असम राज्य के विद्वान वकील ने निर्देशों के तहत एक बयान दिया कि यदि प्रतिवादी नंबर । को राज्य विधिक सेवाओं में बनाए रखने की अनुमति दी गई, तो उसे न्यायिक सचिव के रूप में तैनात नहीं किया जाएगा। क्या राज्य उन्हें कानूनी अनुस्मारक के रूप में भी तैनात नहीं करने के लिए सहमत था, राज्य के विद्वान वकील ने निर्देश देने के लिए समय मांगा और बाद में रिपोर्ट दी कि उन्हें कोई निर्देश नहीं मिला है और इसलिए, वह कोई भी निर्देश देने की स्थिति में नहीं हैं कि वह उच्च न्यायालय को आश्वासन दें या इस न्यायालय के समक्ष कोई भी बयान दें। यही स्थिति है आैर तीन कारकों को ध्यान में रखते हुए: (i) कि प्रतिवादी नंबर 1 मुख्य न्यायिक धारा से दूर रहा है और केवल 15 वर्षों से अधिक की अवधि के लिए कार्यकारी कार्यों का निर्वहन किया है, (ii) कि प्रतिवादी नंबर 1 की सेवानिवृत्ति में वर्षों की एक सीमांत संख्या शेष है, और (iii) कि उनके बेटे को एक गंभीर

न्यूरोलॉजिकल समस्या है, जिसका, विधिक सेवाओं में बने रहने और परिणामस्वरूप गुवाहाटी में रहने से बेहतर तरीके से ध्यान रखा जा सकता है, हम निम्नलिखित निर्देशों के अनुसार अपील का निपटारा करते हैं :-

(1) जहां तक कानून के सवालों पर निष्कर्षों का संबंध है, उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के फैसले को रद्द कर दिया गया है ;

(2) आज से छह सप्ताह की अवधि के भीतर, असम राज्य एक निर्णय लेगा कि क्या प्रतिवादी नंबर 1 को सचिव (न्यायिक) और कानूनी अनुस्मारक के अलावा किसी अन्य कार्यालय में तैनात किया जा सकता है, जिस स्थिति में वह असम विधिक सेवा वहां बना रहेगा और प्रत्यावर्तन की आवश्यकता नहीं है;

(3) यदि उपरोक्त निर्देश का पालन नहीं किया जा सकता है तो छह सप्ताह के अंत में प्रतिवादी नंबर 1 को न्यायिक सेवा के सदस्य के रूप में उच्च न्यायालय में वापस भेज दिया जाएगा और उसे उच्च न्यायालय की ओर से दिए गए आश्वासन के अनुसरण और निरंतरता में नियुक्ति दी जाएगी। लागत के संबंध में बिना किसी आदेश के उपरोक्त शर्तों के अनुसार अपील का निपटारा किया जाता है। एन.जे.

अपील निस्तारित।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी श्रीमती रैना शर्मा (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।